नईदुनिया

संपादकीय

उम्र नहीं, प्रतिभा तय करती है ऊंचाइयां

अमेरिका के फ्लोरिडा से आई एक खबर ने पूरी दुनिया का ध्यान अपनी ओर खींचा है। 18 वर्षीय नाथन थॉमस कॉलेज में प्रोफेसर बनकर इतिहास रच चुके हैं। उन्होंने 306 वर्ष पुराना रिकॉर्ड तोड़ते हुए यह साबित कर दिया कि सीखने की लगन, मेहनत और प्रतिभा के आगे उम्र केवल एक संख्या है। आज नाथन उसी विश्वविद्यालय में पढ़ा रहे हैं, जहां से उन्होंने अपनी स्नातक की पढ़ाई पूरी की थी। उनकी कक्षा में कई छात्र उनसे उम्र में बड़े हैं, लेकिन ज्ञान और योग्यता ने उन्हें शिक्षक के रूप में स्थापित कर दिया है।

नाथन की यह उपलब्धि किसी संयोग का परिणाम नहीं है। उन्होंने 10 वर्ष की उम्र में स्कूली शिक्षा पूरी कर ली थी। इसके बाद ड्यूल एनरोलमेंट के माध्यम से कॉलेज की पढ़ाई शुरू की और 14 वर्ष की उम्र में फ्लोरिडा इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी में प्रवेश लिया। कम समय में स्नातक की डिग्री पूरी करने के बाद आज वे वहीं अध्यापन और शोध कार्य कर रहे हैं। उनका मानना है कि शिक्षा का उद्देश्य केवल परीक्षा पास करना नहीं, बल्कि लगातार सीखना और ज्ञान को दूसरों तक पहुंचाना है।

यह उपलब्धि हमारे समाज और शिक्षा व्यवस्था के सामने एक महत्वपूर्ण प्रश्न भी खड़ा करती है। क्या हम प्रतिभा को उसकी क्षमता के अनुरूप अवसर दे रहे हैं? आज भी हमारी शिक्षा प्रणाली तय उम्र, तय पाठ्यक्रम और तय समय के ढांचे में बंधी हुई है। असाधारण प्रतिभा वाले बच्चों के लिए यह व्यवस्था कई बार उनकी गति को सीमित कर देती है। नाथन को उन्नत पाठ्यक्रम और लचीली शिक्षा प्रणाली का लाभ मिला, इसलिए वे अपनी क्षमता के अनुरूप आगे बढ़ सके।

भारत की नई शिक्षा नीति भी लचीलेपन और प्रतिभा के विकास की बात करती है, लेकिन इसे जमीनी स्तर पर प्रभावी ढंग से लागू करने की जरूरत है। स्कूलों में प्रतिभाशाली बच्चों की समय रहते पहचान हो, उन्हें विशेष मार्गदर्शन, छात्रवृत्ति, शोध और उच्च अध्ययन के अवसर मिलें। विश्वविद्यालयों को भी ऐसे विद्यार्थियों के लिए अलग व्यवस्था विकसित करनी चाहिए, ताकि उनकी प्रतिभा का पूरा उपयोग हो सके।

प्रोफेसर बनना केवल उपलब्धि नहीं, बल्कि बड़ी जिम्मेदारी भी है। इसके लिए ज्ञान के साथ परिपक्वता, धैर्य और संवाद कौशल की भी आवश्यकता होती है। नाथन ने यह साबित किया कि नेतृत्व उम्र से नहीं, बल्कि क्षमता, अनुशासन और समर्पण से आता है। वहीं यह भी जरूरी है कि ऐसी प्रतिभाओं पर अनावश्यक दबाव न बनाया जाए। मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक जीवन और व्यक्तिगत विकास का संतुलन भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

भारत में भी कम उम्र में असाधारण उपलब्धियां हासिल करने वाले अनेक बच्चे हैं, लेकिन आर्थिक, सामाजिक और संस्थागत बाधाओं के कारण वे अक्सर आगे नहीं बढ़ पाते। आवश्यकता ऐसे माहौल की है, जहां प्रतिभा की पहचान हो, उसे प्रोत्साहन मिले और आगे बढ़ने के समान अवसर उपलब्ध कराए जाएं।

नाथन थॉमस ने केवल एक रिकॉर्ड नहीं तोड़ा, बल्कि लाखों युवाओं के मन में यह विश्वास भी जगाया है कि प्रतिभा की कोई उम्र नहीं होती। यदि सही अवसर, मार्गदर्शन और प्रोत्साहन मिले तो युवा असंभव दिखने वाली ऊंचाइयों को भी हासिल कर सकते हैं। यही सोच किसी भी समाज और राष्ट्र की सबसे बड़ी ताकत बनती है। प्रतिभा को पहचानना, उसे अवसर देना और उसकी उड़ान में सहयोग करना ही भविष्य के विकास की सबसे मजबूत नींव है। यही इस उपलब्धि का सबसे बड़ा संदेश है।

आजकल

नशे का जहर अब हर गली तक

भारत में नशे की समस्या अब केवल कानून-व्यवस्था का मुद्दा नहीं रही, बल्कि यह राष्ट्रीय सुरक्षा, सामाजिक ताने-बाने और युवा पीढ़ी के भविष्य के लिए गंभीर चुनौती बन चुकी है। केंद्रीय गृह मंत्रालय के अनुसार, देशभर में एनडीपीएस अधिनियम के तहत 3.96 लाख मामले दर्ज हैं। यह बढ़ती संख्या बताती है कि नशे का नेटवर्क अब महानगरों से निकलकर छोटे शहरों, कस्बों और शैक्षणिक संस्थानों तक पहुंच चुका है। सिंथेटिक ड्रग्स ने इस खतरे को और बढ़ा दिया है। इन्हें लैब में तैयार कर चॉकलेट, वेप और कैंडी जैसे रूपों में युवाओं तक पहुंचाया जा रहा है, जिससे इनकी पहचान करना कठिन हो गया है।

चिंता की बात यह भी है कि डार्क वेब, सोशल मीडिया, टेलीग्राम और क्रिप्टोकरेंसी के जरिए नशे का कारोबार तेजी से फैल रहा है। पारंपरिक पुलिसिंग के लिए इस नेटवर्क तक पहुंचना आसान नहीं है। वहीं, मामलों की अधिकता से जांच और न्यायिक प्रक्रिया भी प्रभावित हो रही है। फोरेंसिक जांच में देरी और विशेष विशेषज्ञता की कमी कई बार कार्रवाई को कमजोर कर देती है।

सबसे ज्यादा प्रभावित 15 से 30 वर्ष आयु वर्ग के युवा हैं। बेरोजगारी, मानसिक तनाव, पारिवारिक समस्याएं और सोशल मीडिया पर नशे का बढ़ता महिमामंडन उन्हें इस दलदल की ओर धकेल रहा है। इसलिए केवल छापेमारी या गिरफ्तारी से समस्या का समाधान संभव नहीं है। स्कूलों और कॉलेजों में जागरूकता अभियान, काउंसलिंग, पुनर्वास केंद्र और रोजगार के अवसर बढ़ाने होंगे। नशे के खिलाफ लड़ाई को अब केवल कानून लागू करने तक सीमित नहीं रखा जा सकता। केंद्र और राज्यों की एजेंसियों के बीच बेहतर समन्वय, साइबर निगरानी, तस्करी के अंतरराष्ट्रीय नेटवर्क पर सख्त कार्रवाई और समाज की सक्रिय भागीदारी जरूरी है। 3.96 लाख मामले केवल आंकड़ा नहीं, बल्कि चेतावनी हैं कि यदि समय रहते प्रभावी कदम नहीं उठाए गए तो सिंथेटिक ड्रग्स का यह जाल देश की युवा शक्ति को खोखला कर देगा।

भारत में बढ़ा पुलिस बल, लेकिन अपराध पर नियंत्रण अब भी चुनौती

निजी सुरक्षा संस्थानों में भी देश सबसे आगे

देश की आंतरिक सुरक्षा व्यवस्था को लेकर इन दिनों एक बार फिर बहस तेज हो गई है। दिल्ली में हाल के विरोध प्रदर्शनों और कानून-व्यवस्था से जुड़े घटनाक्रमों के बाद यह सवाल उठना स्वाभाविक है कि क्या हमारे पास पर्याप्त पुलिस बल है और क्या मौजूदा व्यवस्था अपराधों पर प्रभावी अंकुश लगाने में सक्षम है। इसी बीच ब्यूरो ऑफ पुलिस रिसर्च एंड डेवलपमेंट (बीपीआरएंडडी) और राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के आंकड़ों ने एक दिलचस्प तस्वीर सामने रखी है। इनके अनुसार 2014 से 2023 के बीच देश में पुलिस बल की संख्या में लगातार वृद्धि हुई है और आज भारत के पास दुनिया का सबसे बड़ा सिविल पुलिस बल है। इसके बावजूद अपराध के आंकड़े चिंता बढ़ा रहे हैं और प्रति 10 लाख आबादी पर पुलिसकर्मियों की उपलब्धता के मामले में भारत अभी भी अमेरिका जैसे देशों से पीछे है।

वर्ष 2014 में देश में कुल पुलिस बल 13.5 लाख था, जो 2023 तक बढ़कर 21.6 लाख हो गया। यानी एक दशक में लगभग आठ लाख नए पुलिसकर्मियों की भर्ती हुई। इसी अवधि में प्रति 10 लाख आबादी पर पुलिसकर्मियों की संख्या 1,029 से बढ़कर 1,503 हो गई। यह बढ़ोतरी इसलिए भी आवश्यक थी, क्योंकि देश की आबादी तेजी से बढ़ रही है और शहरीकरण के कारण अपराध के नए स्वरूप सामने आए हैं। साइबर अपराध, नशे की तस्करी, संगठित अपराध और आतंकवाद जैसी चुनौतियों से निपटने के लिए पुलिस बल का आधुनिकीकरण और विस्तार समय की मांग थी। सरकार ने विभिन्न राज्यों में भर्ती अभियान चलाकर कानून-व्यवस्था को मजबूत करने का प्रयास किया।

हालांकि पुलिस बल बढ़ने के साथ अपराध के आंकड़े भी बढ़े हैं। वर्ष 2014 में प्रति 10 लाख आबादी पर अपराध की दर 2,292 थी, जो 2023 में बढ़कर 2,703 हो गई। कोविड महामारी के दौरान 2020 में यह आंकड़ा 3,100 तक पहुंच गया था। बाद के वर्षों में कुछ कमी जरूर आई, लेकिन 2023 में फिर वृद्धि दर्ज की गई। इससे स्पष्ट है कि केवल पुलिस बल की संख्या बढ़ाने से अपराध अपने आप कम नहीं होते। इसके पीछे सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी कारण भी जिम्मेदार हैं। बेरोजगारी, महंगाई, नशे की बढ़ती प्रवृत्ति और सोशल मीडिया के दुरुपयोग ने अपराध को बढ़ावा दिया है। साथ ही रिपोर्टिंग व्यवस्था बेहतर होने के कारण पहले दब जाने वाले कई मामले अब दर्ज होने लगे हैं।

तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो 2023 के आंकड़ों के अनुसार भारत के पास 21.6 लाख पुलिसकर्मी हैं, जबकि चीन में 19 लाख, अमेरिका में आठ लाख, इंडोनेशिया में 4.4 लाख और नाइजीरिया में 3.7 लाख पुलिसकर्मी हैं। इस दृष्टि से भारत दुनिया का सबसे बड़ा पुलिस बल रखने वाला देश है। लेकिन प्रति 10 लाख आबादी पर पुलिसकर्मियों की संख्या देखें तो भारत में यह 1,503 है, जबकि अमेरिका में 2,376, इंडोनेशिया में 1,552 और नाइजीरिया में 1,632 है। चीन में यह संख्या 1,348 है। यानी जनसंख्या के अनुपात में भारत में अभी भी पुलिस बल की कमी बनी हुई है। इसलिए केवल भर्ती बढ़ाना ही पर्याप्त नहीं, बल्कि प्रशिक्षण, संसाधन और कार्य संस्कृति में भी व्यापक सुधार की आवश्यकता है।

एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू निजी सुरक्षा संस्थानों का तेजी से बढ़ता विस्तार है। नए निजी सुरक्षा संस्थान खोलने के मामले में भी भारत दुनिया में अग्रणी बन गया है। शहरीकरण और सुरक्षा संबंधी बढ़ती चिंताओं के कारण अपार्टमेंट, मॉल, उद्योग और निजी प्रतिष्ठानों में सुरक्षा गार्डों की मांग लगातार बढ़ रही है। अनुमान है कि देश में एक करोड़ से अधिक लोग निजी सुरक्षा क्षेत्र में कार्यरत हैं। इसका एक कारण यह भी है कि पुलिस पर काम का बोझ इतना अधिक है कि वह हर स्थान पर तत्काल नहीं पहुंच पाती। हालांकि विशेषज्ञों का मानना है कि यदि निजी सुरक्षा क्षेत्र का प्रभावी नियमन और प्रशिक्षण सुनिश्चित नहीं किया गया, तो यह भी नई समस्याओं का कारण बन सकता है।

अपराध बढ़ने के पीछे कई अन्य कारण भी हैं। साइबर अपराध, ऑनलाइन ठगी और डिजिटल फ्रॉड के मामले तेजी से बढ़ रहे हैं, जबकि पारंपरिक पुलिस व्यवस्था अभी पूरी तरह इसके अनुरूप तैयार नहीं हो पाई है। युवाओं में नशे की बढ़ती लत चोरी, लूट और हिंसा को बढ़ा रही है। शहरों में बढ़ती आर्थिक असमानता भी सामाजिक तनाव और अपराध को जन्म देती है। इसके साथ ही न्यायिक प्रक्रिया में देरी से अपराधियों में कानून का भय कम होता है। इसलिए पुलिस सुधारों के साथ न्यायपालिका और जेल व्यवस्था में भी सुधार जरूरी है।

विशेषज्ञों का मानना है कि पुलिस को राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त कर अधिक पेशेवर बनाया जाना चाहिए। आधुनिक तकनीक, सीसीटीवी, फेस रिकग्निशन, ड्रोन और डेटा एनालिटिक्स का अधिक उपयोग किया जाए। सामुदायिक पुलिसिंग को बढ़ावा देकर जनता और पुलिस के बीच विश्वास मजबूत किया जाए। पुलिसकर्मियों के मानसिक स्वास्थ्य और कार्य परिस्थितियों में भी सुधार आवश्यक है। साथ ही शिक्षा, रोजगार और सामाजिक जागरूकता पर समान रूप से ध्यान देना होगा।

भारत वर्तमान में सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 0.45 प्रतिशत आंतरिक सुरक्षा और पुलिस व्यवस्था पर खर्च करता है, जो अमेरिका और चीन की तुलना में कम है। इसलिए संसाधनों, तकनीक और बुनियादी ढांचे में निवेश बढ़ाने की आवश्यकता है। पिछले एक दशक में पुलिस बल बढ़ाने के मामले में भारत ने उल्लेखनीय प्रगति की है, लेकिन अपराध के आंकड़े बताते हैं कि अभी लंबा रास्ता तय करना बाकी है। केवल संख्या बढ़ाने से नहीं, बल्कि पुलिस व्यवस्था में गुणात्मक सुधार, आधुनिक तकनीक, प्रभावी न्याय व्यवस्था और सामाजिक सहभागिता से ही सुरक्षित और अपराध-मुक्त भारत का लक्ष्य हासिल किया जा सकता है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

जलवायु परिवर्तन से खेती पर संकट ...

देश के 651 जिलों में से 310 हाई रिस्क जोन में, राजस्थान सबसे ज्यादा प्रभावित

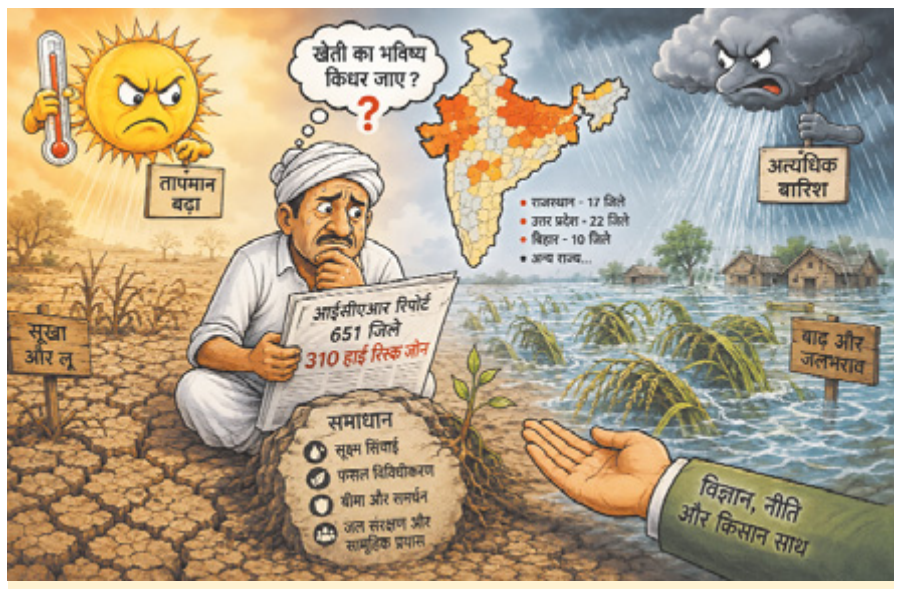

आईसीएआर की इस रिपोर्ट को तैयार करने के लिए पिछले कई वर्षों के तापमान, वर्षा, सूखा, बाढ़ और फसल उत्पादन के आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है। रिपोर्ट के अनुसार जलवायु परिवर्तन के कारण मानसून का स्वरूप तेजी से बदल रहा है। कहीं अत्यधिक वर्षा हो रही है तो कहीं लंबे समय तक सूखा पड़ रहा है। तापमान में लगातार वृद्धि से गेहूं और धान जैसी प्रमुख फसलों की उत्पादकता प्रभावित हो रही है।

देश में जलवायु परिवर्तन अब केवल मौसम की बात नहीं रह गया है, बल्कि यह सीधे हमारी थाली से जुड़ा संकट बन चुका है। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) के ताजा आकलन ने चिंता बढ़ा दी है। रिपोर्ट के अनुसार देश के 651 जिलों में से 310 जिले अब हाई रिस्क जोन में आ चुके हैं, जहां जलवायु परिवर्तन का सबसे अधिक असर खेती और खाद्य सुरक्षा पर पड़ रहा है। सबसे अधिक प्रभावित राज्यों में राजस्थान सबसे ऊपर है, जहां 17 जिले इस श्रेणी में हैं। इसके बाद उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्य भी गंभीर जोखिम का सामना कर रहे हैं। यह स्थिति संकेत देती है कि आने वाले समय में देश की कृषि और किसान दोनों के सामने अभूतपूर्व चुनौतियां खड़ी होने वाली हैं। यदि समय रहते प्रभावी कदम नहीं उठाए गए, तो खाद्यान्न की कीमतों में वृद्धि के साथ किसानों की आर्थिक परेशानी, पलायन और आत्महत्या जैसी समस्याएं भी गहरा सकती हैं।

आईसीएआर की इस रिपोर्ट को तैयार करने के लिए पिछले कई वर्षों के तापमान, वर्षा, सूखा, बाढ़ और फसल उत्पादन के आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है। रिपोर्ट के अनुसार जलवायु परिवर्तन के कारण मानसून का स्वरूप तेजी से बदल रहा है। कहीं अत्यधिक वर्षा हो रही है तो कहीं लंबे समय तक सूखा पड़ रहा है। तापमान में लगातार वृद्धि से गेहूं और धान जैसी प्रमुख फसलों की उत्पादकता प्रभावित हो रही है। राजस्थान में स्थिति और अधिक गंभीर है, क्योंकि वहां पहले से ही जल संकट है। अब भीषण गर्मी और लू की अवधि बढ़ने से फसलें समय से पहले पक रही हैं और उत्पादन में भारी गिरावट आ रही है। जोधपुर, बीकानेर और बाड़मेर जैसे जिलों में किसान पारंपरिक फसलों की जगह कम पानी वाली फसलों की ओर बढ़ रहे हैं, लेकिन बाजार और सरकारी समर्थन के अभाव में उन्हें अपेक्षित लाभ नहीं मिल पा रहा।

उत्तर प्रदेश और बिहार में चुनौती का स्वरूप अलग है। यहां बाढ़ और जलभराव की घटनाएं लगातार बढ़ रही हैं। मानसून के दौरान नदियों का जलस्तर अचानक बढ़ने से खेतों में खड़ी फसलें नष्ट हो जाती हैं। वहीं सर्दियों में कोहरा और पाला भी उत्पादन को प्रभावित करता है। कई जिलों में लगातार तीन-चार वर्षों तक सूखा या बाढ़ जैसी स्थितियां बनी रहने से खेती अनिश्चित हो गई है। किसान यह तय नहीं कर पा रहा कि किस फसल की बुवाई करे। कर्ज लेकर खेती करने के बाद भी जब उपज नहीं मिलती, तो वह आर्थिक संकट में फंस जाता है। यही कारण है कि अनेक क्षेत्रों में किसानों की मानसिक और आर्थिक परेशानियां लगातार बढ़ रही हैं।

इस पूरे संकट का सबसे बड़ा असर देश की खाद्य सुरक्षा पर पड़ेगा। भारत की आबादी लगातार बढ़ रही है और अनुमान है कि वर्ष 2050 तक यह 160 करोड़ के पार पहुंच सकती है। ऐसे में यदि 310 जिलों की कृषि लगातार प्रभावित होती रही, तो देश के लिए खाद्यान्न उत्पादन बनाए रखना कठिन हो जाएगा। गेहूं और चावल के उत्पादन पर पहले ही दबाव दिखाई देने लगा है, जबकि दलहन और तिलहन जैसी फसलें जलवायु परिवर्तन के प्रति और अधिक संवेदनशील हैं। इसका सीधा असर बाजार में महंगाई के रूप में सामने आएगा और गरीब तथा मध्यम वर्ग सबसे अधिक प्रभावित होगा। इसलिए कृषि वैज्ञानिकों का मानना है कि अब खेती को बदलती जलवायु के अनुरूप ढालना समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

सरकार और कृषि वैज्ञानिक इस चुनौती से निपटने के लिए कई योजनाओं पर काम कर रहे हैं। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा एवं पोषण मिशन के तहत सूखा-रोधी और बाढ़-सहनशील बीजों को बढ़ावा दिया जा रहा है। फसल विविधीकरण को प्रोत्साहित किया जा रहा है, ताकि किसान केवल एक फसल पर निर्भर न रहें। ड्रिप और स्प्रिंकलर जैसी सूक्ष्म सिंचाई तकनीकों को बढ़ावा देने के लिए सब्सिडी दी जा रही है, ताकि कम पानी में अधिक उत्पादन संभव हो सके। मौसम आधारित फसल बीमा और किसान क्रेडिट कार्ड जैसी योजनाओं को भी अधिक प्रभावी बनाने का प्रयास किया जा रहा है। हालांकि जमीनी स्तर पर इन योजनाओं का क्रियान्वयन अभी भी अपेक्षित गति नहीं पकड़ पाया है और अनेक किसान इन सुविधाओं से अब भी वंचित हैं।

केवल सरकारी योजनाएं ही पर्याप्त नहीं होंगी। किसानों को भी अपनी खेती की पद्धति बदलनी होगी। पारंपरिक अनुभव और आधुनिक विज्ञान का संतुलित उपयोग करना होगा। कम पानी वाली फसलों को अपनाना, मल्चिंग के माध्यम से मिट्टी की नमी बनाए रखना, जैविक खाद का उपयोग बढ़ाना तथा वर्षा जल संचयन जैसी तकनीकों को गांव-गांव तक पहुंचाना आवश्यक है। पंचायत स्तर पर जलवायु मित्र किसान समूह बनाकर नई तकनीकों और बेहतर कृषि पद्धतियों की जानकारी साझा की जा सकती है।

राजस्थान इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। यहां कई क्षेत्रों में बाजरा और मूंग जैसे मोटे अनाज की खेती दोबारा बढ़ रही है, जो कम पानी में भी अच्छी पैदावार देते हैं। सौर ऊर्जा से संचालित पंपों का उपयोग बढ़ा है और खेतों में वृक्षारोपण को भी प्रोत्साहन मिल रहा है। लेकिन इन प्रयासों को सफल बनाने के लिए नीति स्तर पर मजबूत समर्थन और प्रभावी बाजार व्यवस्था जरूरी है। जलवायु परिवर्तन वैश्विक चुनौती है, लेकिन इसका सबसे अधिक प्रभाव भारत जैसे कृषि प्रधान देशों पर पड़ रहा है। 310 जिलों का हाई रिस्क जोन में पहुंचना केवल एक आंकड़ा नहीं, बल्कि गंभीर चेतावनी है। यदि सरकार, वैज्ञानिक और किसान मिलकर जलवायु अनुकूल कृषि को प्राथमिकता दें, तो इस संकट को अवसर में बदला जा सकता है। यही रास्ता देश की खाद्य सुरक्षा और किसानों के सुरक्षित भविष्य की सबसे मजबूत आधारशिला बनेगा।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

ट्रैफिक का शोर हमारी सेहत पर भारी...

नींद बाधित, तनाव बढ़ा, पार्किंसन का खतरा

दिल्ली की सड़कों पर हर दिन हजारों वाहनों का शोर केवल ध्वनि प्रदूषण नहीं, बल्कि एक धीमा जहर बनकर लोगों के शरीर और मन दोनों को प्रभावित कर रहा है। सुबह से रात तक बजते हॉर्न, तेज आवाज में चलते इंजन और लगातार गूंजता ट्रैफिक अब आम जिंदगी का हिस्सा बन चुका है। लेकिन विशेषज्ञों का मानना है कि इसके असर को हम हल्के में ले रहे हैं। ताजा शोध बताते हैं कि ट्रैफिक का शोर सिर्फ नींद खराब नहीं करता, बल्कि दिमाग और तंत्रिका तंत्र से जुड़ी गंभीर बीमारियों का खतरा भी बढ़ाता है। लंबे समय तक शोर के संपर्क में रहने से तनाव बढ़ाने वाले हार्मोन का स्तर बढ़ जाता है और नींद बाधित होती है, जिससे मस्तिष्क की कोशिकाओं को नुकसान पहुंच सकता है।

वैज्ञानिकों के अनुसार, जब कोई व्यक्ति लगातार ऊंचे डेसीबल वाले शोर में रहता है तो उसका शरीर लगातार अलर्ट मोड में बना रहता है। इस स्थिति में कोर्टिसोल नामक तनाव हार्मोन का स्तर बढ़ जाता है। इसका असर रक्तचाप, हृदय गति और प्रतिरोधक क्षमता पर पड़ता है। साथ ही नींद का चक्र भी बिगड़ जाता है। पर्याप्त और गहरी नींद न मिलने से थकान, चिड़चिड़ापन और एकाग्रता में कमी आती है। यदि यह स्थिति लंबे समय तक बनी रहे तो इसका सीधा प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ता है।

ट्रैफिक के शोर और पार्किंसन जैसी तंत्रिका संबंधी बीमारी के बीच भी संबंध सामने आया है। पार्किंसन में मस्तिष्क की कोशिकाएं धीरे-धीरे नष्ट होने लगती हैं और शरीर की गतिविधियों पर नियंत्रण कम हो जाता है। पहले इसे केवल बढ़ती उम्र या अनुवांशिक कारणों से जुड़ा माना जाता था, लेकिन अब शोध बताते हैं कि पर्यावरणीय कारण भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लगातार शोर के संपर्क में रहने वाले लोगों में पार्किंसन के लक्षण जल्दी दिखाई देने की आशंका अधिक होती है। इसका कारण यह है कि शोर से होने वाला तनाव और नींद की कमी मस्तिष्क में डोपामिन बनाने वाली कोशिकाओं को नुकसान पहुंचाती है। डोपामिन की कमी को ही पार्किंसन का प्रमुख कारण माना जाता है।

इस विषय पर हुए एक बड़े अध्ययन में 40 वर्ष या उससे अधिक उम्र के 31 लाख लोगों का लगभग 18 वर्षों तक अध्ययन किया गया। इसे सड़क यातायात के शोर और पार्किंसन रोग के बीच संबंध पर अब तक की सबसे बड़ी स्टडी माना जा रहा है। अध्ययन में पाया गया कि लंबे समय तक अधिक शोर वाले क्षेत्रों में रहने वालों में पार्किंसन का खतरा बढ़ जाता है। वहीं 11.5 डेसीबल शोर बढ़ने पर इसका जोखिम लगभग 3 प्रतिशत बढ़ जाता है। यह आंकड़ा छोटा दिख सकता है, लेकिन बड़ी आबादी के संदर्भ में यह गंभीर सार्वजनिक स्वास्थ्य चुनौती है।

दिल्ली, मुंबई, कोलकाता और भोपाल जैसे शहरों में स्थिति और भी चिंताजनक है। यहां रात 10 बजे के बाद भी ट्रैफिक का शोर 70 से 80 डेसीबल तक पहुंच जाता है, जबकि विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार रात में 40 डेसीबल से अधिक शोर स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। अस्पतालों, स्कूलों और रिहायशी क्षेत्रों के आसपास भी यह मानक लगातार टूट रहा है। लोग भले इस शोर के साथ जीने के अभ्यस्त हो गए हों, लेकिन शरीर लगातार इसका दुष्प्रभाव झेल रहा है। चिकित्सकों के अनुसार, लगातार शोर के कारण हृदय रोग, मधुमेह, मोटापा और मानसिक अवसाद का खतरा भी बढ़ता है। बच्चों में सीखने की क्षमता प्रभावित होती है, जबकि बुजुर्गों के लिए यह और अधिक नुकसानदेह साबित होता है।

समाधान केवल व्यक्तिगत स्तर पर संभव नहीं है। ट्रैफिक नियमों का सख्ती से पालन, अनावश्यक हॉर्न पर जुर्माना, अधिक शोर करने वाले वाहनों की जांच, ग्रीन बेल्ट और ध्वनि अवरोधक दीवारों का निर्माण जरूरी है। लोगों को भी रात के समय अनावश्यक शोर, तेज संगीत और पटाखों से बचना चाहिए। ट्रैफिक का शोर अब केवल असुविधा नहीं, बल्कि सार्वजनिक स्वास्थ्य का गंभीर संकट बन चुका है। यदि समय रहते इस पर प्रभावी कदम नहीं उठाए गए तो आने वाले वर्षों में तनाव, अनिद्रा, हृदय रोग और पार्किंसन जैसी बीमारियों का बोझ बढ़ता जाएगा। सरकार को ध्वनि प्रदूषण को वायु और जल प्रदूषण जितनी गंभीरता से लेना होगा, वहीं नागरिकों को भी यह समझना होगा कि सड़क पर बजाया गया एक अनावश्यक हॉर्न किसी की नींद, मानसिक शांति और सेहत पर भारी पड़ सकता है। शांत शहर ही स्वस्थ समाज की पहचान है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)